जैन धर्म में मनोविद्या

—गणेश ललवाणी (कलकत्ता)

(धर्म एवं दर्शन के क्षेत्र में जाने-माने क्रान्तिकारी चिन्तक,
हिन्दी-संस्कृत-बंगला-अँग्रेजी आदि अनेक भाषाविज्ञ लेखक)

●

जीव तत्व की आलोचना करते हुए जैन मनीषियों ने मनोविद्या नामक ऐसे तत्व की आलोचना की है, विश्लेषण किया है जिसे कि आज हम 'साइकोलाजी' कहते हैं।

जीव के गुणों में चेतना एवं उपयोग को प्रधान माना गया है। किन्तु चेतना क्या है? यह समझना उतना आसान नहीं है क्योंकि यह अनुभूति का विषय है। फिर भी चेतना की अभिव्यक्ति किन-किन रूपों में होती है इस पर प्रकाश डाला गया है। यह अभिव्यक्ति तीन प्रकार से होती है, यथा—(१) सुख-दुख की अनुभूति से, (२) कार्य करने की शक्ति से, (३) ज्ञान की अनुभूति से। जैन दर्शन के अनुसार स्थावर जीव भी सुख-दुख अनुभव करता है, पर कार्य करने की शक्ति अनुभव नहीं करता जबकि निम्नस्तरीय त्रस जीव सुख-दुख की अनुभूति के साथ कार्य करने की शक्ति को अनुभव करता है, लेकिन उसे ज्ञान की अनुभूति नहीं होती। ज्ञान की अनुभूति तो होती है मात्र मनुष्य जैसे उच्च स्तरीय जीवों को ही। इन तीन प्रकार की अनुभूतियों को पूर्ण चैतन्य के विकास क्रम के तीन स्तर भी मान सकते हैं—प्रथम स्तर है सुख-दुख के अनुभव का, द्वितीय कार्यशक्ति का, तृतीय ज्ञानशक्ति का। इससे यह फलित हुआ कि जिसे साधारणतया अचेतन पदार्थ समझा जाता है उन मृत्तिकादि में भी चेतना शक्ति तो है, किन्तु है अविकसित रूप में। उस चेतना की अभिव्यक्ति होती है मात्र सुख-दुख के अनुभव में। पाश्चात्य क्रम-विकासवादी मनोवैज्ञानिकों ने भी आज इस तथ्य को स्वीकार कर लिया है। वे कहने लगे हैं कि मनुष्येतर जीवों में भी एक प्रकार का निम्न स्तरीय चैतन्य रहता है। वे केवल अचैतन्य वस्तु पिण्ड मात्र ही नहीं है।

जीव का दूसरा गुण है उपयोग। उसके भी दर्शन और ज्ञान के भेद से दो प्रकार बताए गए हैं। वस्तु का सामान्य अनुभव है दर्शन। दर्शन में तो मात्र इतनी ही उपलब्धि होती है 'कुछ है'। उदाहरण-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वरूप एक गाय को लीजिए। आपने गाय देखी। दर्शन से आपको इतना ही अनुभव हुआ 'गाय कुछ है' पर क्या है इसकी विशेष जानकारी नहीं होती। उसके सींग है, पूँछ है, वह घास खाती है, दूध देती है यह सब ज्ञान नहीं होता। ज्ञान तो उपयोग का दूसरा प्रकार है जिसका उदय होता है दर्शन के बाद। और यह किस प्रकार उदय होता है, आगे जाकर इसकी चर्चा करेंगे।

शास्त्रों में दर्शन के चार प्रकार बताए गए हैं। चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवल-दर्शन। आँखों से देखकर जब यह अनुभव होता है कि 'कुछ है' तो उसे चक्षुदर्शन कहते हैं और जो अनुभव आँख के अतिरिक्त नाक, कान, जीभ और त्वचा से होता है उसे कहते हैं अचक्षुदर्शन। अवधि-दर्शन का अर्थ है एक सीमा के मध्य रूपी द्रव्यों का सामान्य-सा अनुभव और केवलदर्शन का विश्व के समस्त पदार्थों का सामान्य अनुभव।

उपयोग का दूसरा लक्षण है 'ज्ञान'। ज्ञान के पाँच भेद हैं—मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यव और केवल। इनमें प्रथम दो मति और श्रुत ज्ञान को जैन दर्शन में परोक्ष एवं शेष तीन को प्रत्यक्ष माना है। अन्य दर्शन मति अर्थात् इन्द्रियलब्ध ज्ञान को ही प्रत्यक्ष मानता है। किन्तु जैनदर्शन ऐसा नहीं मानता। वह कहता है जो ज्ञान आत्मा द्वारा होता है वही ज्ञान प्रत्यक्ष है और जो इन्द्रिय तथा मन के सहारे से उत्पन्न होता है वह परोक्ष है। क्योंकि जो ज्ञान सीधा आत्मा से होता है उसमें भ्रान्ति हो नहीं सकती। कारण वह स्व का ज्ञान है। पर जो ज्ञान अन्य की सहायता से उत्पन्न होता है वह भ्रान्तियुक्त हो सकता है। इस भ्रान्त ज्ञान को ही जैनदर्शन 'मिथ्याज्ञान' कहता है और इसके विपरीत ज्ञान को सम्यक् ज्ञान। मति के मिथ्याज्ञान को कुमति, श्रुत के मिथ्याज्ञान को कुश्रुत कहा जाता है।

अवधिज्ञान आत्मिक होने पर भी उस समय मिथ्या हो सकता है जब कि वह अवधि की पूर्ण सीमा तक का पूर्ण ज्ञान न होकर आंशिक रूप में उत्पन्न होता है। इस अपूर्ण अवधिज्ञान को विभंग-ज्ञान कहते हैं। भगवान महावीर के समय के कुछ ऐसे व्यक्तियों का उल्लेख हम शास्त्रों में पाते हैं जिन्हें यह विभंगज्ञान हुआ था और भगवान के समीप जाने पर उनके द्वारा उस भ्रान्त ज्ञान का निरसन किया गया था।

दर्शन के बाद सर्वप्रथम जिस ज्ञान का उद्भव होता है वह है मतिज्ञान। यह ज्ञान मन और इन्द्रियों के सहारे से ही उत्पन्न होता है। मतिज्ञान के भी तीन प्रकार हैं—उपलब्धि, भावना, उपयोग। किन्तु, इनकी व्याख्या निष्प्रयोजन है। इनका स्वरूप तो नाम से ही प्रकट है। यथा—उपलब्धि अर्थात् ज्ञान का अनुभव, भावना—उस ज्ञान का चिन्तन, उपयोग—वैसी ही परिस्थिति में पुनः उसका प्रयोग। इसी प्रक्रिया का और अधिक स्पष्टीकरण करने के लिए कुछ जैन दार्शनिकों ने मतिज्ञान को पाँच भागों में विभक्त किया है। जैसे—मति, स्मृति, संज्ञा, चिन्ता, अभिनिबोध।

दर्शन से 'कुछ है' यह बोध होने के पश्चात ही ज्ञान की जो क्रिया प्रारम्भ होती है उसका नाम है उपलब्धि या मति। पाश्चात्य दर्शन में इसे सेन्स इन्ट्यूइसन (sense intuition) या परसेप्शन (perception) कहते हैं। जो मतिज्ञान केवल इन्द्रियों की सहायता से होता है उसे इन्द्रियनिमित्त मतिज्ञान कहते हैं और जो ज्ञान अनिन्द्रिय अर्थात् अर्थात् मन की अपेक्षा रखता है उसे अनिन्द्रिय मतिज्ञान कहते हैं। पर ये दोनों ज्ञान एक ही विषय के दो रूप हैं। आपने आँख से गाय देखी पर जब तक मन उसको ग्रहण नहीं करता तब तक उसका बोध नहीं होता। राह चलते हम हजारों वस्तुएँ देखते हैं पर मन का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संयोग नहीं होने के कारण वे हमारे ज्ञान का विषय नहीं बनतीं। ज्ञान का विषय वही बनता है जिसके साथ हमारे मन का संयोग होता है। 'लक' ने इसे (idea of sensation) और (idea of reflection) कहा था। आज के पाश्चात्य दार्शनिकगण इसे वहिरानुशीलन (extrospection) और अन्तरानुशीलन (introspection) कहते हैं।

इन्द्रियों के भेद से मतिज्ञान के भी पाँच भेद हैं। यथा—आँखजनित मतिज्ञान, कानजनित मतिज्ञान, नाकजनित मतिज्ञान, जिह्वाजनित मतिज्ञान और त्वचाजनित मतिज्ञान।

मतिज्ञान या उपलब्धि परसेप्शन (perception) हमें जिस प्रकार होती है अर्थात् उसमें जो-जो चित्तवृत्तियाँ काम करती हैं उसका विवरण आज के वैज्ञानिकगण जिस प्रकार दे रहे हैं उसे जैन दार्शनिकों ने हजारों वर्ष पूर्व ही दे दिया था। जैन दर्शन ने उन चित्तवृत्तियों को चार नाम दिये हैं—(१) अवग्रह, (२) ईहा, (३) अवाय, (४) धारणा। दर्शन और अवग्रह में कुछ अधिक अन्तर नहीं है। कारण अवग्रह से भी 'कुछ है' इतनी ही प्रतीति होती है, उसके विषय में सुनिश्चित या सविशेष रूप में कोई ज्ञान नहीं होता। जैसा कि हमने गाय के उदाहरण से स्पष्ट किया था। पाश्चात्य वैज्ञानिक इसे सेन्सेशन (sensation) या प्रिमियम कगनितम (premium cognitum) कहते हैं। विषय को स्पष्ट करने के लिये इसकी तुलना हम किसी नायक-नायिका के प्रथम दर्शन से कर सकते हैं। प्रथम होता है मात्र दर्शन। फिर यह जानने की इच्छा होती है, 'वह कौन है ?' इस इच्छा का नाम ही है ईहा। पाश्चात्य दर्शन में इसे परसेप्चुअल एटेन्शन (perceptual attention) कहते हैं। वह कौन है यह जानने की व्यग्रता के फलस्वरूप वे जानकारी हासिल करते हैं कि वह अमुक है। बस इसी प्रक्रिया का नाम है 'अवाय'। पाश्चात्य दार्शनिकों की परिभाषा में यह परसेप्चुअल डिटरमिनेशन (perceptual determination) है। अर्थात् वह अमुक का पुत्र है, अमुक की कन्या है आदि आदि। अवाय में मतिज्ञान पूर्णता प्राप्त कर लेता है। पर यह अवाय भी किस काम का यदि वह ज्ञान चित्त में स्थिरता प्राप्त न करे। इतना सब कुछ होने के पश्चात् भी यदि नायक-नायिका एक दूसरे को भूल जाएँ तो वह समस्त व्यर्थ है। अतः जिस चित्तवृत्ति के आधार पर यह स्थिरता प्राप्त होती है उसे 'धारणा' कहते हैं। पाश्चात्य दार्शनिकगण इसे परसेप्चुअल रिटेन्शन (perceptual retension) कहते हैं।

अवग्रह से धारणा तक मतिज्ञान का प्रथम क्षेत्र है। धारणा में जो वस्तु बैठ जाती है वह स्मृति का विषय बन जाती है। पूर्वानुभूत विषय के स्मरण का नाम है स्मृति। पाश्चात्य विज्ञान इसे रिकलेक्शन (recollection) या रिकग्निशन (recognition) कहता है। रिकग्निशन या रिकलेक्शन का तात्पर्य है देखी हुई वस्तु को मन में लाना और उसकी सहायता से जो वस्तुएँ देखी जाती हैं उन्हें पहचानना। हमने गाय देखी। वह देखना चित्त में स्थिर हो गया। स्थिर होते ही उसकी स्मृति बन गयी। अतः जब हम गाय को देखते हैं तो उसी स्मृति के आधार पर हम कहते हैं यह गाय है। 'हब्स' 'हिउम' आदि पाश्चात्य दार्शनिकों का यह मत था कि जिसे हम स्मृति कहते हैं वह क्षीयमान मतिज्ञान ही है। परन्तु यह गलत है। कारण, इसमें कुछ ऐसी विशेषता भी है कि जिसके कारण उसे कभी नहीं भूलते एवं देखने मात्र से ही उसकी स्मृति हो आती है। जैसे कि गाय को देखते ही आप दस वर्ष की उमर में भी यही कहेंगे 'यह गाय है' और पचास वर्ष की उमर में भी यही कहेंगे—'यह गाय है'। स्मृति यदि क्षीयमान मति ही होती तो आप उसे भूल जाते। अतः 'हब्स' एवं 'हिउम' के मत का आज के 'रीड' आदि पाश्चात्य दार्शनिकों ने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परित्याग कर दिया है। उनका कहना है कि स्मृति मति पर आधारित होने पर भी इसकी कुछ अपनी विशेषता है जिससे स्मरण सदा बना रहता है।

स्मृति सदैव नहीं रहती इसके उदाहरणस्वरूप कहा जा सकता है कि किसी पूर्व देखे व्यक्ति को कुछ समय पश्चात् पुनः देखते हैं तो कभी-कभी याद नहीं कर पाते। ठीक है यह। किन्तु, इसका कारण यह नहीं कि स्मृति आपको धोखा दे गयी। इसका वास्तविक कारण यह था कि उस व्यक्ति के प्रति आपकी धारणा में कमी थी। आपने उसे सरसरी निगाह से देखा था। मन में कोई स्थायी रूप नहीं दिया गया था। धारणा पक्की नहीं होने के कारण आप उसे भूल गये थे।

मनोविज्ञान में ही नहीं, योग दर्शन में भी धारणा (जिसका दूसरा नाम है भावना) का बहुत बड़ा महत्व है। मनोवैज्ञानिक चिकित्सा का जो क्रम है वह इसी धारणा पर प्रतिष्ठित है। उदाहरणतः जो हरदम महसूस करता है कि मैं बीमार हूँ वह सदैव बीमार रहता है। कारण, यह उसकी धारणा बन जाती है और वह सचमुच ही बीमार हो जाता है। मनोवैज्ञानिक चिकित्सा इस निराशा से आपको मुक्त करने का प्रयत्न करती है ताकि आप स्वस्थ और सबल बन सकें।

फिर भी स्मृति अपने आप में पूर्ण नहीं है। आपने गाय देखी थी आपके मस्तिष्क में उसकी स्मृति बन गई। किन्तु बाद में जब भी आप गाय को देखते हैं तो इसमें मात्र स्मृति ही काम नहीं करती। आपने पूर्व में जो गाय देखी थी उसका सादृश्य आप इसमें खोजते हैं। इस सादृश्य अनुसन्धान का नाम है प्रत्यभिज्ञा या संज्ञा। पाश्चात्य देशों में इसे एसिमिलेशन (assimilation), कम्पारिजन (comparison) या कन्सेप्सन (c nception) कहते हैं। प्रत्यभिज्ञा चार प्रकार की होती है। गाय के उदाहरण से इसे स्पष्ट कर रहे हैं। (१) गाय जैसी है अतः गाय है। यह प्रत्यभिज्ञा सादृश्य से हुई। पाश्चात्य वैज्ञानिक इसे एसोसिएशन बाई सिमिलरिटि (association by similarity) कहते हैं। (२) गाय भैंस जैसी नहीं है। भैंस के भी गाय की ही भाँति सींग है, पूँछ है, वह भी घास खाती है, दूध देती है फिर भी वह गाय नहीं है। अतः गाय का जो यह ज्ञान हुआ वह भैंस के वैसादृश्य से हुआ। इसीलिये पाश्चात्य विज्ञान इसे एसोसिएशन बाई कन्ट्रास्ट (association by contrast) कहता है। (३) निरन्तर देखते-देखते गाय के विषय में आपको जो विशेष ज्ञान हो जाता है उस विशेष ज्ञान को पाश्चात्य दर्शन में कन्सेप्शन (conception) कहा जाता है। इस प्रकार विश्व के अन्य सभी द्रव्यों से गाय का जो विशेषत्व है उसे जानने की प्रक्रिया को जैन परिभाषा में तिर्यक्-सामान्य और पाश्चात्य परिभाषा में स्पेसिज आइडिया (species idea) कहते हैं। (४) इसी प्रकार भिन्न-भिन्न द्रव्यों में जिस ऐक्य की उपलब्धि होती है उस पर आप जो दृष्टि डालते हैं उसे जैन दर्शन में ऊर्ध्वता-सामान्य और पाश्चात्य दर्शन में सब्सट्राटम (ubstratum) या एसी (esse) कहा गया है। इस दृष्टि में गाय को गायत्व के विशेष धर्म से न देखकर जीव धर्म से देखते हैं। इसको और स्पष्ट करने के लिये अलंकारों का उदाहरण लीजिये। हार, बाला, अंगूठी आदि में जब उनके विशेषत्व को न देखकर केवल सुवर्ण को देखते हैं तो वह ऊर्ध्वतासामान्य की दृष्टि से ही देखते हैं। वस्तुतः द्रव्य का इन चार प्रकारों से जो ज्ञान होता है वह प्रत्यभिज्ञा ही है।

चिन्ता—चिन्ता को ऊह या तर्क कहा गया है। तर्क का सहज अर्थ है विचार। प्रत्यभिज्ञा या संज्ञा में हम गाय की एक संज्ञा बना लेते हैं जिसे हम गोत्व कहते हैं। फिर गोत्व और गाय में एक अविनाभाव सम्बन्ध भी स्वीकार कर लेते हैं, अर्थात् जहाँ गोत्व है वहाँ गाय है। आज हम जिसे गाय कहते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं वह इस तर्क या विचार पर ही कहते हैं। कारण हमने गाय की जो संज्ञा प्रस्तुत की थी वह सब इसमें है। पाश्चात्य विज्ञान इसे इन्डक्शन (induction) कहते हैं। और वे भी जैन दार्शनिकों की भाँति ही इन्डक्शन को आबजरवेशन (observation) या भूयोदर्शन का परिणाम मानते हैं। साथ ही जैनाचार्यों की भाँति यह भी मानते हैं कि गाय और गोत्व का जो सम्बन्ध है वह इनवेरियेबल (invariable) व अनकन्डिशनल (unconditional) है। जैन दर्शन इसे अविनाभाव या अन्यथानुपपत्ति कहता है।

अभिनिबोध—तर्कलब्ध विषय की सहायता से अन्य विषय के ज्ञान को अभिनिबोध कहते हैं। इसका दूसरा नाम है अनुमान। अनुमान को पाश्चात्य विज्ञान में डिडक्शन (deduction) कहते हैं। न्यायशास्त्र में इसका एक प्रचलित उदाहरण है 'पर्वतो वह्निमान धूमात्'। पर्वत से धूम या धुआँ निकलते देखकर हम अनुमान करते हैं कि पर्वत पर आग लगी है। यह अनुमान तर्क पर प्रतिष्ठित है। आग एवं धुएँ में जो अविनाभाव सम्बन्ध है वह तर्क से ही प्राप्त हुआ था। जहाँ-जहाँ हमने आग देखी, वहाँ-वहाँ धुँआ देखा। अतः यह सोच लेते हैं कि पहाड़ से जब धुँआ निकल रहा है तो अवश्य ही वहाँ आग है।

वास्तव में अनुमान तर्कशास्त्र का प्राण है। यह प्रत्यक्षमूलक होने पर भी ज्ञान के आहरण में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। कारण, अनुमान के आधार पर ही हम संसार के अधिकतम व्यवहार चला रहे हैं और अनुमान के आधार पर ही तर्कशास्त्र का विशाल भवन खड़ा है।

अनुमान कार्य-कारण के सम्बन्ध से ही उद्भूत होता है। अग्नि से धूम की उत्पत्ति होती है। अग्नि के अभाव में धूम उत्पन्न नहीं होता। इस प्रकार कार्य-कारणभाव व्याप्ति का अविनाभाव सम्बन्ध कहलाता है। इसका निश्चय तर्क से होता है जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं। अविनाभाव निश्चित हो जाने पर कारण को देखते ही कार्य का बोध हो जाता है। यह बोध ही अनुमान है। जिस प्रकार धूम को देखकर ही अदृष्ट अग्नि का अनुमान हम कर लेते हैं इसी प्रकार जब हम किसी शब्द को सुनते ही अनुमान कर लेते हैं कि यह आवाज पशु की है या मनुष्य की। फिर मनुष्य की भी है तो अमुक मनुष्य की, पशु की है तो अमुक पशु की। स्वर से स्वर वाले को पहचान लेना अनुमान का ही फल है।

अनुमान के भी दो भेद हैं—स्वार्थानुमान, परार्थानुमान। आप जब अपनी अनुभूति से यह ज्ञान प्राप्त करते हैं तो वह स्वार्थानुमान होता है। पर वाक्य के प्रयोग द्वारा जब वह अन्य को समझाया जाता है तो उसे परार्थानुमान कहा जाता है। परार्थानुमान का शाब्दिक रूप कैसा होगा इस विषय में न्याय दर्शन ने इन पाँच अवयवों को माना है :

१. पर्वत में अग्नि है (प्रतिज्ञा)
२. क्योंकि वहाँ धूम है (हेतु)
३. जहाँ-जहाँ धूम है, वहाँ-वहाँ अग्नि है (व्याप्ति)
४. पर्वत में धूम है (उपनय)
५. अतः पर्वत में अग्नि है (निगमन)

प्रसंगवश प्रमाण के विषय में यहाँ दो शब्द उपस्थित किए जाते हैं। प्रमाण चार प्रकार के होते हैं। यथा—(१) प्रत्यक्ष, (२) अनुमान, (३) आगम प्रमाण, (४) उपमान प्रमाण। प्रत्यक्ष प्रमाणों की आलोचना मति आदि ज्ञान की आलोचना में हो जाती है, अनुमान का उपरोक्त आलोचना में। आगम प्रमाण का वर्णन श्रुतज्ञान की व्याख्या में करेंगे। उपमान प्रमाण वहाँ है जहाँ प्रसिद्ध पदार्थ के सादृश्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से अप्रसिद्ध पदार्थ का बोध होता है। गवय एक पशु है जो कि गाय जैसा होता है। यह बात जिन लोगों ने सुन रखी है वे गाय के सदृश पशु को देखते ही समझ जायेंगे कि यह गवय है। इस प्रकार दर्शन और स्मरण के निमित्त से होने वाला सादृश्यता का ज्ञान ही उपमान है।

श्रुतज्ञान—सामान्यतः श्रुत का अर्थ है सुना हुआ। वक्ता द्वारा प्रयुक्त शब्द को सुनकर वाच्य-वाचक सम्बन्ध से श्रोता को जो शब्दबोध होता है वह श्रुतज्ञान कहलाता है। इस परिभाषा से यह स्पष्ट है कि श्रुतज्ञान के पूर्व मतिज्ञान होना अनिवार्य है। ज्ञान के द्वारा श्रोता को शब्दों का जो ज्ञान होता है, वह श्रुतज्ञान है। अतः मति और श्रुत ज्ञान में कार्य-कारण का सम्बन्ध है। मतिज्ञान कारण है और श्रुतज्ञान कार्य। मतिज्ञान के अभाव में श्रुतज्ञान पैदा नहीं होता। यद्यपि ये दोनों ज्ञान एक साथ रहने वाले हैं, परोक्ष हैं, फिर भी उनमें भिन्नता है। मतिज्ञान मूक है, श्रुतज्ञान मुखर है। मतिज्ञान वर्तमान विषय का ग्राहक है तो श्रुतज्ञान त्रिकाल विषय का ग्राहक है। श्रुतज्ञान से ही हमें प्राचीन इतिहास आदि का, अपनी भवितव्यता का ज्ञान होता है। अभिप्राय यह है कि इन्द्रिय-मनोजन्य दीर्घ-कालीन ज्ञान धारा का प्राथमिक अपरिपक्व अंश मतिज्ञान है। और उत्तरकालीन परिपक्व अंश श्रुतज्ञान है। जब यह श्रुतज्ञान किसी को पूर्ण मात्रा में प्राप्त हो जाता है तो उसे श्रुतकेवली कहते हैं।

श्रुतज्ञान के दो भेद हैं—(१) द्रव्यश्रुत (२) भावश्रुत। भावश्रुत ज्ञानात्मक है, द्रव्यश्रुत शब्दात्मक है। द्रव्यश्रुत ही आगम है।

अनेक भारतीय धर्मों की भाँति जैन धर्म भी आगम के प्रामाण्य को अंगीकार करता है। कारण, जैनधर्म के अनुसार अनेकान्त दृष्टि के प्रवर्तक अखण्ड सत्य के द्रष्टा केवलज्ञानी तीर्थंकरों ने समस्त जीवों पर करुणा कर प्रवचन कुसुमों की वृष्टि की। और तीर्थंकारों के महान मेधावी गणधरों ने उन्हें अपने बुद्धिपट पर झेलकर प्रवचनमाला गूँथी। अतः जैनपरम्परा में उन प्रवचन मालाओं को आगम प्रमाण रूप में माना जाता है। तर्क थक जाता है, लक्ष्य डगमगाने लगता है, चित्त चंचल हो उठता है तब आप्त प्रणीत आगम ही मुमुक्षुजनों का एकमात्र आधार बनता है। यह आगम ही द्रव्यश्रुत कहलाता है और इसके सहारे उत्पन्न होने वाला ज्ञान भावश्रुत है।

मतिज्ञान की भाँति जैनाचार्यों ने श्रुतज्ञान को भी लब्धि, भावना, उपयोग और नय इन चार भागों में विभाजित किया है। परन्तु वास्तव में वह विषय समूह का व्याख्यान भेद मात्र है। इस व्याख्यान प्रणाली के साथ पाश्चात्य तर्क विद्या के एक्सप्लेनेशन (explanation) का सादृश्य है। किसी वस्तु को उसके साथ सम्बन्धयुक्त वस्तु की सहायता से निर्देश करने का नाम है 'लब्धि'। उदाहरणतः जब हम गाय शब्द को सुनते हैं तो प्रथम गाय का सामान्य सा अनुभव होता है और वह भी पूर्व देखी हुई गाय के सादृश्य से। इसे ही हम लब्धि कहते हैं। तत्पश्चात् उसकी प्रकृति, स्वरूप, कार्य आदि की जो धारणा बनी हुई थी वह समक्ष आती है। इसी का नाम है 'भावना'। भावना प्रयोग कर जब गाय का अर्थ अवधारित करते हैं उसे 'उपयोग' कहा जाता है। पर 'नय' कुछ विशेष है। इसमें हम गाय शब्द के अर्थ को और भी परिष्कृत करते हैं। जैसे गो शब्द को लीजिए। 'गो' शब्द के अर्थ हैं गाय, धरती, वाक् आदि आदि। अर्थात् जो चलती है वह गो है। किन्तु गो का तात्पर्य हम गाय करते हैं तो उसका चलनारूप सामान्य धर्म को न देखकर केवल उसके विशेष धर्म दूध देने पर दृष्टि निबद्ध करते हैं। बस, यही कार्य है नय का।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मति और श्रुत ज्ञान के साथ-साथ परोक्ष ज्ञान की आलोचना समाप्त होती है। ये दोनों ज्ञान संसारी जीवों को रहते हैं। किन्तु अब जो प्रत्यक्ष ज्ञान विवृत करने जा रहे हैं, वे ऐसे नहीं हैं। जहाँ तक मनुष्य और तिर्यंचों का सम्बन्ध है उन्हें अवधिज्ञान साधना द्वारा ही प्राप्त होता है। जिनमें जन्म से यह ज्ञान देखा जाता है वह उनकी पूर्वजन्मार्जित साधना का परिणाम ही मानना पड़ेगा।

अवधिज्ञान—अवधि का अर्थ है सीमा या मर्यादा। जब आत्मा मन और इन्द्रियों की सहायता के बिना ही साक्षात् आत्मिक शक्ति के द्वारा रूपी पदार्थों को मर्यादित रूप में जानने लगती हैं तो उसे अवधिज्ञान कहते हैं।

मनःपर्याय ज्ञान—मनःपर्याय ज्ञान तो विशिष्ट साधक को ही प्राप्त होता है। जिसने संयम की उत्कृष्टता प्राप्त की है, जिसका अन्तःकरण अत्यन्त निर्मल हो चुका है; वही इस ज्ञान का अधिकारी होता है। इस ज्ञान के द्वारा प्राणी की चित्तवृत्तियों को, मनोभावों को, एक निर्दिष्ट सीमा में जाना जा सकता है।

अवधि एवं मनःपर्याय दोनों ज्ञान ही यद्यपि अपूर्ण हैं तथापि यह असाधारण हैं। आधुनिक विज्ञान जिसे क्लेअरवायेन्स (clairvoyance) कहते हैं उसके साथ अवधि एवं टेलीपैथी या माइण्ड-रीडिंग (telepathy or mind-reading) के साथ मनःपर्याय ज्ञान की कथंचित् तुलना की जा सकती है।

केवलज्ञान—जिस ज्ञान से त्रिकालवर्ती और त्रिलोकवर्त्ती समस्त वस्तुएँ एक साथ जानी जा सकती हैं उस सर्वोत्तम ज्ञान को केवलज्ञान कहा जाता है। थियोजाफिस्टगण इस ान को ओम्नीसाएन्स (omniscience) कहते हैं। इस ज्ञान की प्राप्ति होने पर आत्मा सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और परम चिन्मय बन जाती है। यह मनुष्य की साधना का चरम फल है। इस फल की प्राप्ति होने पर आत्मा जीवन्मुक्त हो जाती है और पूर्ण सिद्धि के सन्निकट पहुँच जाती है।

□□

ज्योतिर्मयीव दीपस्य क्रिया सर्वाऽपि चिन्मयी।
यस्यानन्यस्वभावस्य तस्य मौनमनुत्तरम् ॥

जिस तरह दीपक की समस्त क्रियाएँ (ज्योति का ऊँचा-नीचा होना) प्रकाशमय होती है, ठीक उसी तरह आत्मा की सभी क्रियाएँ ज्ञानमय होती हैं उस अनन्य स्वभाव वाले (एक आत्म स्वभाव में लीन) मुनि का मौन अनुत्तर (सर्वश्रेष्ठ) होता है।

—उपाध्याय यशोविजय जी कृत :—ज्ञानसार ८/१०४
—**विवेचन** : पन्यासप्रवर श्री भद्रगुप्तविजय जी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org